जीव शास्त्र और रसायन शास्त्र : जीवन और मृत्यु

पी. बालाराम

31 अक्टूबर, 2009 के *टाइम्स ऑफ इंडिया* में प्रकाशित एक रपट का शीर्षक एक उत्तेजक सवाल के रूप में था : 'क्या शैवालों ने शक्तिशाली डायनासौर को मार डाला था?' इस रपट का उप-शीर्षक इसके संभावित कारण की ओर भी इशारा करता था,'सूक्ष्म जीवों द्वारा छोड़े गए विष अब तक हुई पांच विशाल विलुप्तियों के प्रमुख कारण हो सकते हैं।' सामूहिक विलुप्तियों का ज़िक्र 24 अक्टूबर 2009 की *दी इकॉनॉमिस्ट* पत्रिका में भी एक गूढ शीर्षक से प्रकाशित हुआ था 'मैं साक्षात् मृत्यु हूं - संसार का संहारक'। ये दोनों रपटें साढ़े छः करोड़ वर्षों पहले डायनासौर के अचानक विलुप्त हो जाने पर केन्द्रित थी। आम तौर पर यह माना जाता है कि किसी उल्का के पृथ्वी से टकराने के कारण हुई उथल-पुथल का नतीजा डायनासौर के विनाश के रूप में सामने आया था। लगभग तीन दशक पहले लुई अल्वारीज और उनके सहयोगियों ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि क्रेटेशियस-टर्शरी काल में जैव-विलोप पृथ्वी के बाहर के कारणों से हुआ था। उनके तर्क का आधार यह था कि उस समय बनी, गहरे समुद्र में पाई जाने वाली चूने की चट्टानों में इरिडियम बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है जो अंतरिक्ष से ही आ सकता है। उनकी मान्यता यह थी कि किसी उल्का के पृथ्वी के टकराने पर उस (उल्का) की संहति से साठ गुना अधिक मिट्टी वातावरण में उड़ती है। इसके फलस्वरूप सूर्य की किरणें पृथ्वी तक नहीं पहुंच पाती हैं और प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बंद हो जाती है। प्रकाश संश्लेषण रुक जाने के कारण पूरी भोजन श्रृंखला अस्त-व्यस्त हो जाती है और सभी जीवधारियों पर इसका विपरीत असर पड़ता है। इसके फलस्वरूप होने वाले जीवधारियों के विलोप के सबूत भूगर्भीय चट्टानों में पाए जाते हैं। उन्होंने अनुमान लगाया था कि पृथ्वी से टकराने वाली उल्का का व्यास 6 से 14 कि.मी. के बीच रहा होगा और यह माना जाता है कि मेक्सिको के युकाटान प्रायद्वीप में स्थित 180 कि.मी. व्यास का चिक्सुलुब विवर इस टक्कर के फलस्वरूप बना होगा।

दी इकॉनॉमिस्ट में प्रकाशित लेख इस रोचक संभावना की ओर इशारा करता है कि पहले के सारे अनुमान गलत भी हो सकते हैं। उसमें टेक्सास टेक विश्वविद्यालय के शंकर चटर्जी के एक प्रस्तुतिकरण का उल्लेख है जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि उक्त टक्कर से बना विवर अनुमान से कहीं बड़ा रहा होगा। उनका कहना है कि मुंबई के समुद्र तट के पास स्थित 500 कि.मी. व्यास का एक विवर वह स्थान हो सकता है जहां उल्का टकराया होगा। इस स्थान के पास स्थित समुद्र में डूबा बॉम्बे हाई नामक पहाड़ इस टक्कर का सबूत है जो टक्कर के बाद पृथ्वी में से निकले लावा से बना है। चटर्जी ने इस विवर का नाम 'शिव' रखा है।

विलोप के इन सिद्धांतों में कुछ विसंगतियां हैं और यह संभावना है कि आगे नए-नए सिद्धांत प्रस्तुत किए जाते रहेंगे। यद्यपि उल्का के टकराने का सिद्धांत रोमांच से भरा हुआ है, मुझे यह सुझाव भी विचार करने योग्य लगता है कि बड़े पैमाने पर होने वाले विलोप के लिए शैवालों से निकले विष ज़िम्मेदार रहे होंगे। यहां मृत्यु अपने शिकार की ओर चुपचाप बढ़ती हुई आती है और शिकार को

पता भी नहीं चलता।

जे.डब्लू. कासल और जे.एच.रॉजर्स जूनियर ने हाल में प्रकाशित अपने शोधपत्र में शैवाल विष वाला सिद्धांत प्रतिपादित किया है। यह 'भूगर्भीय रिकॉर्ड और वर्तमान पर्यावरण' पर आधारित है। इसमें करोड़ों वर्षों में समय-समय पर होने वाले विलोपों के लिए सूक्ष्म जीवों को ज़िम्मेदार ठहराया गया है। इनमें विषैले अणु पैदा करने की अद्‌भुत क्षमता थी। कासल और रॉजर्स के सिद्धांत का आधार यह है कि रीढ़-रहित जंतु, मछलियां, पक्षी और स्तनधारी आज भी शैवालों द्वारा बनाए गए विष के कारण सामूहिक विलोप के शिकार हो रहे हैं। उनका कहना है कि जब शैवाल बड़े पैमाने पर पनपते हैं तब इसकी वजह से बनने वाले कार्बनिक पदार्थ की मात्रा इतनी अधिक होती है इसके सड़ने पर पानी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिसके कारण कई जीवधारियों की मृत्यु हो जाती है। यह विष के सीधे प्रभाव के अतिरिक्त होता है।

इन लेखकों ने भूगर्भीय सबूतों को अपना आधार बनाया है। जीवाश्म रिकॉर्ड से पता चलता है कि फेनेरोज़ोइक काल में जब-जब शैवालों, विशेष रूप से स्ट्रोमेटोलेटिक सायनोबैक्टीरिया की अत्यधिक वृद्धि हुई है तब-तब जीवधारियों के सामूहिक विलोप हुए हैं। किंतु इसे केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य ही कहा जा सकता है कि सामूहिक विलोप के समय की चट्टानों में सायनोबैक्टीरिया की बहुतायत होती है और वर्तमान में इन बैक्टीरिया में ज़बर्दस्त मारक क्षमता होती है।

रोचक बात यह है कि *टाइम्स ऑफ इंडिया* की रपट जिस शोध पत्र पर आधारित है उसके लेखक स्वयं इतने स्पष्ट नहीं हैं। उन्होंने केवल पांच प्रमुख विलोपों में से चार के समय सूक्ष्मजीवों की अत्यधिक गतिविधि के प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। पांचवें विलोप, जो क्रेटेशियस काल के अंत में साढे छः करोड़ वर्षों पहले हुआ था, के समय सायनोबैक्टिरिया की मात्रा में वृद्धि का कोई प्रमाण नहीं है। वैश्विक तपन, जलवायु परिवर्तन और इनसे सम्बंधित परिणामों की भविष्यवाणियों के संदर्भ में शैवालों के फलने-फूलने और सामूहिक विलोप में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। कासल और रॉजर्स ने यह चेतावनी दी है, "जलवायु के गरम होने, समुद्र तल में उतार-चढ़ाव और पोषक पदार्थों की बड़ी मात्रा में उपलब्धता जैसे पर्यावरणीय परिवर्तन समुद्र और मीठे पानी के विशाल क्षेत्रों में शैवालों को फलने-फूलने का अनुकूल अवसर दे सकते हैं। वैश्विक तपन के कारण विषैले आधुनिक शैवालों की वृद्धि के चलते एक और जैविक विपदा आने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।"

बड़े पैमाने पर विलोप के कारणों के बारे में सोचते हुए मुझे स्टीफन जे. गोल्ड के एक निबंध की याद आ गई। जैव विकास को 'अकशेरुकियों का युग', 'मछलियों का युग', 'सरीसृपों का युग', 'स्तनधारियों का युग' और 'मानव का युग' जैसे खंडों में विभाजित करने की प्रवृत्ति के खिलाफ लिखते हुए गोल्ड कहते हैं कि हम आजकल 'बैक्टीरिया के युग' में जी रहे हैं, क्योंकि पृथ्वी पर तीस करोड़ वर्षों पहले जब बैक्टीरिया का विकास हुआ था, तब से संसार हमेशा बैक्टीरिया युग में ही रह रहा है। गोल्ड का यह निबंध जीव शास्त्र के सभी विद्यार्थियों और जैव विकास में रुचि रखने वालों के लिए अनिवार्य वाचन होना चाहिए। बैक्टीरिया का प्राचीन इतिहास, भूगर्भ शास्त्र के विभिन्न कालखंडों में दिखाई देने वाला उनका लचीलापन, उनकी रासायनिक क्षमता और कार्बनिक पदार्थों को पुनर्चक्रित करने की उनकी क्षमता के कारण पर्यावरणीय चक्रों में उनकी केन्द्रीय भूमिका - ये सब गोल्ड के इस कथन की पुष्टि करते हैं, "किसी भी निष्पक्ष आधार पर देखा जाए तो बैक्टीरिया हमेशा प्रमुख जीवधारी रहे हैं।" निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं, "बैक्टीरिया जीवन के इतिहास को आधार देते और उसे बनाए रखते आए हैं।"

सूक्ष्मजीवों की दुनिया में थोड़ी अधिक जटिल रचना वाले और भी एककोशिकीय जीव, फफूंद हैं। ये भी विविध प्रकार के रासायनिक अणुओं का निर्माण कर सकते हैं जिनमें से कुछ में तो बहुत अधिक घातक विष होते हैं। उभयचर जंतुओं की संख्या में तेज़ी से आ रही

गिरावट ने फफूंदों के एक समूह, विशेष रूप से *बॉट्राकोकाइट्रियम डेन्ड्रोबॉटिडिस* नामक जीवधारी की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो मेंढकों का तेज़ी से संहार करता है। यह फफूंद उभयचरों की 350 से अधिक प्रजातियों को संक्रमित करता है और अंटार्क्टिका को छोड़कर अन्य सभी महाद्वीपों पर पाया जाता है। इस विलोप के कारण एक ऐसे जैविक घटनाक्रम का परीक्षण करने का अवसर मिला है जिसके कारण संसार की जैव विविधता बार-बार प्रभावित हुई होगी।

पनामा में *काइट्रिडियोमाइकोसिस* की महामारी के अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि 'अब उभयचरों की संख्या में कमी की बात करना उचित नहीं है, अब तो उभयचरों के वैश्विक विलोप की बात करनी होगी।' इन लेखकों का कहना है कि अब हमें इस धारणा पर पुनर्विचार करना होगा कि संक्रामक रोग विलोप का कारण नहीं बनते। उनका कहना है कि घटती जैव विविधता के कारणों और परिणामों को समझना और संक्रामक रोगों की इकॉलॉजी और विकास को समझना पर्यावरण के समक्ष खड़ी आठ बड़ी चुनौतियों में से दो हैं।

रासायनिक अणु हमेशा वे साधन होते हैं जिनसे सूक्ष्म जीव सामूहिक हत्याकांडों को अंजाम देते हैं। स्पष्ट है कि सूक्ष्मजीव भयावह मारक क्षमता के साथ अन्य जीवधारियों का सफाया करने वाले इन जटिल कार्बनिक पदार्थों के निर्माण में काफी ऊर्जा लगाते हैं। रसायन शास्त्र जीवन और मृत्यु दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। शैवालों (सायनोबैक्टीरिया) द्वारा बनाए जाने वाले कई विषैले पदार्थों की पहचान कर ली गई है, किंतु मेंढकों को मारने वाले फफूंदों के हथियार अभी तक रहस्य बने हुए हैं। क्या इन विषों से बचा जा सकता है? यह एक रोचक बात है कि मेंढकों की त्वचा पर कभी-कभी एक ऐसा बैक्टीरिया पाया जाता है जो रोगजनक फफूंदों को नष्ट करने वाला रसायन बनाता है।

जीव जगत में हो रहे परिवर्तनों में इन अनोखे रसायनों की केन्द्रीय भूमिका के प्रति बढ़ती सजगता के चलते 'प्राकृतिक उत्पादों के रसायन शास्त्र' विषय का पुनरूत्थान हो रहा है। जॉन एम्सली द्वारा लिखी गई अत्यंत रोचक पुस्तक '*मॉलिक्यूल्स ऑफ मर्डरः क्रिमिनल मॉलिक्यूल्स एन्ड क्लासिक केसेस*' में रसायनशास्त्र के इस अस्वस्थ पहलू को उजागर किया गया है। इसमें विष के माध्यम से हत्या के कई प्रकरणों का अपराध विज्ञान की दृष्टि से परीक्षण किया गया है और उपयोग में लाए गए विषों की पहचान पर विशेष ज़ोर दिया गया है। 'उपचार से हत्या तक' शीर्षक वाले खंड में एम्सली ने कुछ बहुत बदनाम रसायनों का विवरण दिया है जिनमें राइसिन, हायोसाइन और एड्रिनेलिन शामिल हैं। राइसिन की तो केवल 70 माइक्रोग्राम मात्रा एक वयस्क व्यक्ति के लिए जानलेवा हो सकती है। एक अन्य खंड में यह दिखाया गया है कि बहुत सरल संरचना वाले अणु बहुत अधिक विषैले हो सकते हैं। एम्सली ने रसायन शास्त्र को हत्या के साथ रोचक ढंग से जोड़ा है और हर प्रकरण एक कड़ी विधिक चुनौती है। किंतु एम्सली की सूची उन सब सामूहिक संहार के हथियारों के सामने कुछ भी नहीं है जिन्हें सूक्ष्म जीवों ने करोड़ों वर्षों के विकास के दौरान बनाया है। जब हम जीवन और मृत्यु की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि जीव शास्त्र और रसायन शास्त्र एक-दूसरे से घुल-मिल गए हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता
व्यक्तिगत 150 रुपए
संस्थागत 300 रुपए

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से
ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016
के पते पर भेजें।